प्राथमिक शिक्षाः विकास की अंकुरण अवस्था

Kanchana Shukla
कंचन शुक्ला
शोधछात्रा
(शिक्षाशास्त्र विभाग)
नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

Received: March 01, 2018 Accepted: April 03, 2018

प्राथमिक शिक्षा से शिक्षा का आधार तैयार होता है, साक्षरता आती है, प्रारम्भिक कुशलता मिलती है, और उचित मनोवृत्ति निर्मित होती है। पढ़ने लिखने की योग्यता प्राप्त कर बालक अपने आस–पास के पर्यावरण की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं और अंधविश्वास तथा अविवेक के चक्कर में नहीं फंसते, उनके विकासात्मक प्रयासों में अवरोध नहीं आ पाता। नई तकनीकी पद्धतियों, कार्यानुभव और यन्त्रों के प्रयोग के प्रति उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न होता है, जो उन्हें आधुनिक युग की उत्पादन क्रियाओं से समायोजन करने में सहायक होता है। इस शिक्षा काल में उनकी मनोवृत्तियाँ भी परिष्कृत होती है, उनमें सहानुभूति भ्रातृत्व, सहिष्णुता, मानवता, सहकारिता आदि की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, जो उन्हें राष्ट्र, समाज तथा कार्यशाला का उपयोगी सदस्य बनाने में सहायक होती है।

सामान्यतयः हमारे देश में प्राथमिक स्तर की शिक्षा की उम्र 6 से 14 वर्ष रखी गयी है, यदि इसे हम संज्ञानात्मक विकास या मानसिक विकास के रूप में देखे तो पियाजे के सिद्धान्त के अनुसर प्राक्संक्रियात्मक अवस्था से लेकर ठोस संक्रियात्मक अवस्था का काल साधारणतयः सम्मिलित किया जा सकता है। इसे उपयोगिता की दृष्टि से देखेंगे तो इस स्तर पर बालक पहले अपने ज्ञान को अपने आस–पास की वस्तुओं से उसी प्रकार सीखना शुरू करता है जैसे वे दिखती हैं, उनमें चिंतन एवं तर्कणा नहीं होती है लेकिन इसी दौरान वह ठोस संक्रियात्मक अवस्था पर भी पहुँचता है जिसमें उसे चिन्तन तथा तर्कणा की मानसिक संक्रिया में प्रवेश मिल जाता है। साथ ही साथ भाषा ज्ञान का उचित संग्रहण भी हो जाता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह स्तर इस बात का सूचक है कि बच्चे के सीखने की प्राकृतिक संरचना या उसका अनुवांशिकता तथा वातावरण बिल्कुल तैयार रहता है। अब सिर्फ उसमें सामग्री डालनी है, जैसा उत्पादन करना है वैसी सामग्री का निर्माण करके उचित व्यक्तितव को विकसित किया जा सकता है।

प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कने की उम्र शिक्षक तथा शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के लिए काफी महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसे टोली उम्र भी कहा जाता है। इस समय बालक अपने उम्र के साथियों के साथ समय बिताना पसंद करते हैं, इसलिए इस समय सामाजिक विकास में कई ऐसे पहलू विकसित होते हैं जो शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। इस स्तर में बालक में अति संवेदनशीलता प्रतिस्पर्धा, क्रीड़ा कौशल, उत्तरदायित्व तथा सामाजिक सूझ इत्यादि का विकास होता है जो सामाजीकरण में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जैसे बच्चे संवेदनशील होते हैं यदि उनमें उचित संवेदन विकसित करने का माहौल दिया जाय तो बालक नैतिक दृष्टि से उन्नत बनाये जा सकते हैं। दूसरी विशेषता प्रतिस्पर्धा यदि प्रतिस्पर्धा टोली से टोली या समाज के संगठित एजेन्सिीज के बीच रचनात्मक ढंग से करवाया जाय तो बच्चों में एकता आपसी सहयोग तथा स्वतंत्र होने की भावना विकसित की जा सकती है। क्रीड़ा कौशल में बालक अन्य बालकों के साथ काफी ईमानदारी एवं सहयोग की भावना दिखाता है इसलिए इस विशेषता से बालकों में उदारता का गुण विकसित किया जा सकता है तथा उन्हें जीतने एवं हारने दोनों का आनंद उठाना सिखाया जा सकता है।

प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह साबित हो गया है कि बालकों में उत्तरदायित्व का विकास धीरे–धीरे किया जाय तो उत्तम होता है अर्थात् पहले साधारण कार्य का उत्तरदायित्व दिया जाय, तत्पश्चात् कठिन एवं जटिल कार्यों का उत्तरदायित्व दिया जाना चाहिए। सामाजिक सूझ का तात्पर्य सामाजिक परिस्थितियों का ठीक ढंग से प्रत्यक्षण करने, उनका अर्थ समझने, आने संबंधित व्यक्तियों को ठीक ढंग से समझने से होता है। प्रयोगात्मक अध्ययनों से यह पता चला है कि जिन बालकों का सामाजिक प्रतयक्षण ठीक होता है उनमें सामाजिक अभियोजन की क्षमता अधिक होती है। इस प्रकार इस अवस्था में स्कूल तथा शिक्षक बालकों को सामाजीकरण करने में मदद कर सकते हैं क्योंकि मनोवैज्ञानिको के अनुसार स्कूल सिर्फ बालकों को शिक्षा ही नहीं देता बल्कि सामाजिक मूलयों, सामाजिक संज्ञान, सामाजिक मानकों के बारे में बताकर बालको में सामाजीकरण का बीज होता है। इसके अलावा बाकर तथा ग्रम्प (1964) में एक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि बालकों पर स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या का प्रभाव भी छात्रो के समाजीकरण पर पड़ता है। वर्ग में छात्रों की संख्या कम करने पर छात्र सक्रिय रहकर वर्ग के कार्यों में भाग लेते हैं और उनमें सामाजिक सहभागिता की भावना जगती है।

शिक्षक का व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा छात्रों क साथ होने वाली अन्तःक्रियाओं का बालकों के सामाजीकरण पर सीधा प्रभाव पड़ता है। बालक शिक्षक के व्यवहार का अनुकरण करते हैं यदि शिक्षक स्वयं सामाजिक शीलगुणों से पूर्ण है तथा बालकों के साथ स्नेहमयी अन्तःक्रियाएं करते हैं तो इससे बालको में प्रोत्साहन तथा उत्साह उत्पन्न होता है और बालकों में सांवेगिक सामाजिक समायोजन की क्षमता बढ़ जाती है।

हिल तथा एटोन (1977) ने अध्ययन किया जिसमें इस तथ्य की पुष्टि की गयी कि जो शिक्षक बालकों के साथ पुरस्कारी अन्तःक्रिया करते हैं उनके व्यवहारों का अनुकरण बालक अधिक करते हैं। इसलिए परिवार पड़ोस विद्यालय, शिक्षक सभी को समायोजित व्यवहार करके बच्चों में उचित सामाजीकरण करने का कुशल प्रयास करना चाहिए।

संवेग जो कि बालक के नैतिक एवं चारित्रिक विकास के मूलाधार होते हैं विभिन्न अध्ययनों से यह साबित हुआ है कि बालक के संवेगों को नियंत्रित करके बड़े से बड़ा सृजन एवं विध्वांसात्मक कार्य किया जा सकता है। शायद आतंकवादी संगठन उनकी

इन्हीं क्षमताओं का फायदा उठाकर छोटा बम जैसे नये षड़यंत्रों की कूटनीति में प्राथमिक स्तर की शिक्षा के उम्र के बालकों की 'बेन स्ट्रामिंग' करके उनसे भी विध्वंसक कार्य करवा लेते हैं इसमें बच्चों की सिफ और सिर्फ सांवेगिक असंतुलन भी मुख्य भूमिका होती है क्योंकि इस उम्र में उनसे जिम्मेदारी की भावना या मजबूरीवश यह कार्य नहीं करवाया जा सकता है।

इस स्तर की अवस्था के बालकों में क्रोध, डर, डाह, उत्सुकता, जलन, हर्ष, दुख तथा अनुराग जैसे संवेगों को नियंत्रित ढंग से अभिव्यक्त करना सीख लेते हैं अर्थात् बालक यह अनुभव करने लगते हैं कि अप्रिय संवेगों जैसे क्रोध डर डाह को सामाजिक व्यक्तियों द्वारा पसन्द नहीं किया जाता है साथ ही बालक इस स्तर पर किसी व्यवहार पर की गयी निन्दनीय टिप्पणियो का अर्थ समझने लगते हैं उनके संवेगों की उत्पत्ति के लिए उद्दीपन नवीन एवं सुस्पष्ट होने चाहिए क्योंकि दुखद संवेगो जैसे– डर, डाह, क्रोध, भय आदि होने पर बालकों में संवेगात्मक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और वे असमायोजित हो जाते हैं और सांवेगिक नियंत्रण विकसित होने पर बालक कभी–कभी अपने संवेगों को भीतर दबा लेते हैं जिससे उनमें घबड़ाहट तथा तनाव बढ़ जाता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से भी यह बात साबित हो चुकी है कि संवेगों की दमित अवस्था बालकों को मानसिक स्वास्थ्य तथा शैक्षिक उपलब्धियों पर बुरा असर डालती है।

अब प्रश्न उठता है कि तीव्र सांवेगिक अनुसंतुलन तथा दमित संवेगात्मक अवस्था से बच्चों को कैसे बचाया जाय? इसके लिए बालकों को उनके माता पिता को उचित प्यार मार्गदर्शन, पासपड़ोस का संतुलित वातावरण तथा समय–समय पर बच्चों का मनोवैज्ञानिक परीक्षण, पढ़ाई के अनुचित दबाव से दूर रखना, पारिवारिक सदस्यों से मेलजोल, बातचीत का उचित प्रबन्धन, मित्रों से घुलने मिलने का अवसर बनाना तथा समय–समय पर प्राकृतिक सौम्यता वाले स्थानों पर पिकनिक मेले या अन्य धार्मिक सामाजिक, आयोजनों में बच्चों के सम्मिलित होने का संतुलित प्रबन्धन करना चाहिए।

शिक्षकों को भी सांवेगिक विकास के कुछ पहलुओं को समझते हुए व्यवहार करना चाहिए, जैसे–सांवेगिक समस्याओं की पृष्ठभूमीय कारणों को समझना–अर्थात् जब कोई बालक क्लास में आक्रामकता या तुनकमिजाजी दिखाता है तो मारने की बजाय यह पता लगाना चाहिए कि बालक किस कुंठा या तनाव में यह व्यवहार कर रहा है।

सरासन (1975)–शिक्षक छात्रों की संवेगात्मक समस्याओं को सही कारणों पर प्रकाश डालकर उसका स्थायी समाधान करने में समर्थ हो पायेंगे।

शिक्षकों का अविष्टन वस्तुनिष्ठ होना चाहिए, जैसे अक्सर देखा जाता है कि 'हठी अक्रामक बच्चों के प्रति कुछ गलत टिप्पणियाँ कर बैठते हैं जिससे बच्चो अधिक तनावग्रस्त हो जाते है। इसलिए ऐसे छात्रों से शिक्षकों को शांत, दोस्ताना तथा खुले दिल से उनके अभद्र व्यवहार के कारणों को समझकर तथा उनका उपचार करके उन्हें शांत करना चाहिए। साथ ही उनकी अभिरूचियों, क्षमताओं को परख करके उन्हें ऐसा कार्यक्रम तैयार करना चाहिए जिससे छात्रों मं सफलता सहभागिता तथा आनंद की अनुभूति अधिक हो तथा नकारात्मक संवेग समाप्त हो सके।

शिक्षकों को छात्रों को सांवेगिक विरेचन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए अर्थात् भीतर हुए सांवेगिक घुटन आसांवेगिक शक्तियों को किसी मनोरंजक, कलात्मक तथा सौन्दर्यात्मक कार्य में लगाकर इसके अलावा किसी तुच्छ घटना या वस्तु के प्रति सांवेगिक विस्फोट करवाकर उनके मन को शांत करवाना चाहिए। स्कीनर (1975) के अनुसार इस तरह के सांवेगिक विरेचन से बालक में धीरे–धीरे सांवेगिक स्थिरता उत्पन्न हो जाती है, जो उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

अतः संक्षेप में इसीलिए प्राथमिक शिक्षा को अंकुरण की अवस्था कहा गया है क्योकि बालक ज्ञान शिक्षा की अवस्था में व्यक्तित्व के चहुमुखी विकास की ओर कपोल निकाले रहते हैं, चारों दिशाओं में पंख फैलाकर उड़ने को तैयार रहते हैं अब जरूरत होती है उन्हें उचित संरक्षण देकर उन्हें राष्ट्र एवं समाज का सर्वोत्तम व्यक्तितव बनाया जा सकता है।

संभवतः प्राथमिक शिक्षा की उपर्युक्त भूमिका के कारण हमारे देश में प्राथमिक सतर की शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क कर दी गयी है। साथ ही साथ सुधर हेतु समय–समय पर उसमें भी नवीन योजनाओं कार्यक्रमों का समायोजन किया जा रहा है। हालांकि लंबे समय तक हामरा देश गुलामी की जंजीरो में जकड़ा रहा जिससे बच्चे भी उचित शिक्षा से वंचित रहे। मिशनरियों ने सबसे पहले प्राथमिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया, तत्पश्चात् 1910 में सर्वप्रथम गोपाल कृष्ण गोखले ने अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की आवाज उठायी, 1937 मे गाँधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा योजना (बेसिक शिक्षा) प्रस्तत की जो द्वितीय विश्व युद्ध के कारण विकसित नहीं हो पाया। तत्पश्चात 1944 में सर्जेन्ट योजना के रूप में यह प्रस्ताव आगे बढ़ा। 1947 में देश स्वतंत्र हो गया और स्वतंत्र भारत के संविधान में घोषणा की गयी कि ''राष्ट्र इस संविधान के लागू होने के समय (1950) से 10 वर्षों के अन्दर 14 वर्ष की आयु के बच्चों की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

इसी क्रम में 1957 में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद (।प्ब्म्) का गठन किया गया और इसे प्राथमिक शिक्षा के प्रसार एवं उन्नयन का कार्य सौपा गया।

कोठारी कमीशन (1964–66) तृतीय पंचवर्षीय योजना के दौरान प्राथमिक शिक्षा में होने वाले अपव्यय एवं अवरोध को रोकने पर बल दिया और साथ ही सरकार का ध्यान पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक और कबीलों के बच्चों की शिक्षा पर गया। और साथ ही औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने से वंचित बच्चों के लिए निरौपचारिक शिक्षा की शुरूआत की गयी।

सातवी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की घोषणा हुई जिसमें कार्य योजना शुरू की गयी साथ में 1987 में ब्लैक बोर्ड योजना का भी शुभारम्भ हुआ जिसके अन्तर्गत प्राथमिक स्कूलों के भवन, शिक्षकों की नियुक्ति और आवश्यक सामग्री एवं संसाधन उपलब्ध कराने का कार्य शुरू किया गया, इसी बीच 1994 में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े जिलो में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (क्च्म्च्) शुरू किया गया और इसी क्रम में नवम्बर 2000 में 'सर्व शिक्षा अभियान' शुरू किया गया और 1 अप्रैल 2001 में निरौपचारिक शिक्षा को शिक्षा गारण्टी योजना और वैकल्पिक एवं नई तरह की शिक्षा (म्ळै।प्म्) के रूप में परिवर्तित कर उसे सर्वशिक्षा से जोड़ दिया

गया। इस अभियान से प्राथमिक शिक्षा में प्रसार एवं उन्नयन को गति मिली। सरकारी आकड़ों के अनुसार 2001 के अन्त तक 6–11 आयु वर्ग के 94 प्रतिशत बच्चों को और 11–14 आयु वर्ग के 84 प्रतिशत बच्चों को उच्च प्राथमिक शिक्षा सुलभ करा दी गयी। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण पर बल दिया गया, इसीलिए 2003 में ब्लैक बोर्ड योजना को भी सर्वशिक्षा का घटक बना दिया गया और इस प्रकार निरन्तर प्रयास एवं सुधार का कार्यक्रम का क्रियान्वयन निरन्तर चल रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह कुमार अरूण (2001) शिक्ष मनोविज्ञान, भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), पटना, पृ सं –112–143।
2. डा गुप्ता एस पी एण्ड डा गुप्ता अलका; (2010), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ सं 139–168
3. सक्सेना स्वरूप एन आर एण्ड चतुर्वेदी शिखाः (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक; आर0लाल0 बुक डिपो मेरठ, पृ 668
4. लाल बिहारी रमन; (2009–10), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स गंगोत्री शिवाजी रोड, मेरठ पृ 570–74।
5. प्रतियोगितादर्पण मासिक पत्रिका (2010), उपकार प्रकाशन, आगरा, पृ 1823–1825।
6. दैनिक जागरण, समाचार पत्र (4 अप्रैल, 2018), संदीपकीय–लोक कल्याण से विमुख शिक्षा–गिरीश्वर मिश्र, पूर्व कुलपति, हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा।
7. उपाध्याय डा प्रतिभा, (2009) भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद पृ 110–111।
8. भटनाकर डा ए बी, भटनागर डा0 मीनाक्षी, एवं भटनागर डा अनुराग' (2009) भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, आर0लाल0 बुक डिपो, मेरठ
9. शर्मा डा आर ए (2010) अधिगम एवं विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।